उपसंहार : *अपने आन्तरिक और बाह्य परिदृश्य को पुनर्नवीन करना*

७ जून, २०२४

आत्मीय पाठक,

इस वर्ष के मार्च माह से हम सब अपनी श्रीगुरु, गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा प्रदान की गईं छः सिखावनियों को पढ़ते रहे हैं, उनका अध्ययन करते रहे हैं और उनके विषय में अपनी अन्तर्दृष्टियों को एक-दूसरे के साथ साझा करते रहे हैं। इन सिखावनियों का शीर्षक है : *अपने आन्तरिक और बाह्य परिदृश्य को पुनर्नवीन करना।* इन सिखावनियों का क्षेत्र व्यापक है—अनेक बार मेरे मन में विचार आया है कि इनमें सिद्धयोग साधना के बारे में 'अथ से इति तक' सब कुछ समाविष्ट है। इनमें प्राचुर्य है, विविधता है, और फिर भी एक विशिष्ट प्रकृति है जो इन सभी सिखावनियों को पिरोए हुए है, और यही बात इनके शीर्षक में अत्यन्त सटीकता से समाहित है।

जब श्रीगुरुमाई ने पहली बार मुझे बताया कि वे इन सिखावनियों को शीर्षक प्रदान करना चाहती हैं, *अपने आन्तरिक और बाह्य परिदृश्य को पुनर्नवीन करना,* तब मैं इस बात से प्रभावित हुई कि ये शब्द कितने *सटीक* लगते हैं, कितने अनिवार्य लगते हैं। यह ऐसा ही था मानो इन सिखावनियों का शीर्षक यही *होने वाला* था, और गुरुमाई जी ने उसे बस किसी सुगन्धित वायु से खींच लिया हो ताकि हम भी इसकी ख़ुशबू को अपनी साँसों में भर सकें। सिद्धयोग पथ पर हम अकसर पुनः नवीन करने के विषय में बात करते हैं। हम अनेक नूतन आरम्भों का उत्सव मनाते हैं; हम विभिन्न संस्कृतियों व परम्पराओं के नववर्षों का सम्मान करते हैं। यह बात उसी विश्वास का एक भाग है जिसे मैंने गुरुमाई जी से सदा अनुभव किया है, उनका यह विश्वास है कि मानव में असीमित क्षमता है बदलने की, विकसित होने की, अपने अन्दर ऐसी नवीनता लाने की कि वही नवीनता—विरोधाभासी रूप से—मानव को उसी आत्मा तक वापस ले आए जो वह हमेशा से रहा है।

श्रीगुरुमाई ने मुझे एक बार एक व्यक्ति की कहानी सुनाई थी जो एक सत्संग समाप्त होने पर बाबा मुक्तानन्द के दर्शन करने आए थे। वे अस्सी वर्ष के थे और सिद्धयोग पथ पर नए थे। जब वे बाबा जी के समक्ष आए तो उन्होंने बाबा जी से पूछा कि साधना की शुरुआत करने के लिए क्या वे बहुत बूढ़े हैं। बाबा जी उन्हें देखकर मुस्कराए और बोले, "साधना शुरू करने के लिए कोई भी कभी

बहुत बूढ़ा नहीं होता। इसे किसी भी उम्र में शुरू किया जा सकता है। और यदि तुम समर्पित होकर इसे करो तो निश्चित ही साधना के फल पाओगे।"

जब मैंने 'पुनर्नवीन करना' के विषय पर गुरुमाई जी की इन सिखावनियों को पढ़ा तब मेरे अन्दर भी वही भाव जगा जो मुझे लगता है उन व्यक्ति को बाबा जी के शब्द सुनकर लगा होगा। एक ओर मुझे आश्वस्त महसूस होता है कि चाहे मेरी उम्र कितनी भी क्यों न बढ़े, या कल चाहे जो भी हुआ हो, या चाहे जितनी भी बार मुझे ऐसा लगे कि मैंने प्रयत्न किया और मैं असफल रही, फिर भी मैं अभी इसी क्षण, अपने आपको पुनः नवीन कर सकती हूँ। इसमें विस्तार होने और हर चीज़ के सम्भव होने का एक भाव भी है—इसमें एक आमन्त्रण है कि मैं इस जगत को देखने व इसमें जीने के अपने उन तरीक़ों का पुनः मूल्यांकन करूँ जिन्हें मैंने "सही" मान लिया हो या फिर ऐसा मान लिया हो कि मैं व्यवहार अथवा विचार करने के अपने विशिष्ट तरीक़े और जीवन की परिस्थितियों के अनुसार ही अपनी आकांक्षाएँ पाल सकती हूँ, उससे अधिक नहीं। मैंने गुरुमाई जी को यह कहते हुए सुना है कि जब लोगों से यह पूछा जाता है कि वे एक विशिष्ट तरीक़े से ही व्यवहार क्यों करते हैं, तो वे अपने हाथ खड़े कर देते हैं और ग़लत सोच के साथ कह देते हैं : "मैं तो बस ऐसा ही हूँ!" यह वाक्य वे इस तरह कहते हैं मानो यह एक निर्विवाद सच्चाई हो, मानो अपने व्यवहार और व्यक्तित्व में बदलाव करने के लिए उनके पास कोई साधन या क्षमता ही न हो, और न ही इस विषय में प्रश्न उठाने का कोई कारण हो कि वे क्यों हमेशा से इसी प्रकार जीते रहे हैं।

किन्तु यदि हम, गुरुमाई जी हमसे जो कह रही हैं, उसे सचमुच अपने हृदय में उतारें—यह कि हमारे आन्तरिक और बाह्य परिदृश्य को वास्तव में *पुनर्नवीन* किया जा सकता है—तो हम उन सीमितताओं में निहित उस भ्रम को देखने लगते हैं जिसे हमने लम्बे समय से सच मान लिया है। हम कुछ नया और जो *वास्तव* में सच हो, उसे भीतर से उभरने देने के लिए अपने अन्दर जगह बना लेते हैं। श्रीगुरु की सिखावनियों के मार्गदर्शन में और श्रीगुरु की कृपा का सम्बल पाकर हम विलक्षण प्रगति कर सकते हैं।

***

अनेक अवसरों पर, गुरुमाई जी ने कहा है कि सिद्धयोग की सिखावनियों को प्रदान करने का उनका संकल्प है कि लोग स्वयं को सचमुच जान सकें। इनमें से एक मुख्य पहलू है 'आत्मा को जानना'—यानी परम आत्मा को, उस दिव्यता को जानना जो इस ब्रह्माण्ड की हर वस्तु में और हमारे अन्दर विद्यमान है। तथापि, इसके अन्तर्गत वे पहलू भी अपरिहार्य रूप से समाविष्ट हैं जिनसे हम अपने व्यक्तित्व की

विशिष्टताओं से भलीभाँति परिचित हों : हमारी आदतें, हमारे इतिहास, हमारी अनोखी प्रवृत्तियाँ। आख़िरकार, जीवात्मा द्वारा ही तो परम आत्मा को जाना जा सकता है।

यह बात मुझे हमेशा आश्चर्य से भर देती है कि कैसे गुरुमाई जी अपनी सिखावनियों में रोज़मर्रा के आम लगने वाले कार्यों के उदाहरण देती हैं यानी वे कार्य जो हम जानते-बूझते या अनजाने में करते हैं, वे दैनिक घटनाएँ जिनका हम सामना करते हैं—इन उदाहरणों द्वारा वे हमें दिखाती हैं कि इनमें भी हमारे पास ऐसे सुअवसर हैं कि हम उस सत्य के साथ जुड़ें जो हम वास्तव में हैं।

'पुनर्नवीन करना' के विषय पर दी गई छः सिखावनियों के बारे में भी ऐसा ही है। 'पुनः नामकरण करना' का उदाहरण लें जिसके बारे में गुरुमाई जी पहली सिखावनी में बताती हैं। संसार में हम जिस प्रकार चीज़ों को समझते हैं और जिस तरह हम जीते या कार्य करते हैं, वह काफ़ी हद तक उन नामों पर आधारित है जो हमने दिए हैं : लोगों को, स्थानों को, वस्तुओं को। नाम, पहचान के सर्वप्रथम व निकटतम चिह्न हैं, अपनी इन्द्रियों द्वारा हम सतत जिस जानकारी को ग्रहण कर रहे हैं उसका वर्गीकरण करने और उसे सुव्यवस्थित करने का साधन हैं। नाम यह दर्शाता है कि एक व्यक्ति कौन है; नाम यह भी दर्शा सकता है कि वह व्यक्ति कहाँ से है, वह किस समुदाय या संस्कृति से है, यहाँ तक कि नाम यह भी दर्शा सकता है कि उस व्यक्ति को किस दृष्टि से देखना चाहिए। इस प्रकार, नाम विस्तार लाने में मददगार हो सकता है और उतनी ही सहजता से यह सीमितता का भी निर्माण कर सकता है।

शायद यही कारण है कि हमें इतिहास के और साथ ही वर्तमान समय के ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिसमें लोग 'पुनः नाम देने' की प्रक्रिया को करते हैं। हम इसे उन देशों के सन्दर्भ में देखते हैं जिन्होंने किसी विदेशी सत्ता के शासन से मुक्त होने के बाद अपनी स्वतन्त्रता पुनः पा ली हो। हो सकता है कि औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत, इन प्रान्तों के नगरों, शहरों और राज्यों को विशिष्ट नाम दिए जाएँ; और एक बार वह शासन हट जाए तो ये नाम भी हटा दिए जाएँ तथा राष्ट्रीय या सांस्कृतिक पहचान के आधार पर स्पष्टता से पुष्टि करते हुए, दृढ़ दावा करते हुए उन स्थानों को दोबारा अपने मूल नाम दिए जाएँ।

हम धार्मिक व आध्यात्मिक परम्पराओं में भी ऐसा होते हुए देखते हैं। जो लोग संन्यास दीक्षा लेते हैं, वे अपने मूल नाम त्यागकर एक नया नाम या उपाधि ग्रहण करते हैं जोकि उस परम्परा के अनुरूप होती है जिसमें वे दीक्षित हैं। उनका पुनः नामकरण होना, सांसारिक जीवन के बन्धनों को त्यागने के उनके निर्णय का प्रतीक है। यह उनके संन्यास का और उनके चुने हुए पथ के प्रति उनके समर्पण का सूचक है।

अपनी सिखावनी में, श्रीगुरुमाई हमें प्रोत्साहित करती हैं कि हम पुनः नामकरण करने के इस सिद्धान्त को अपनाएँ—नामों में निहित शक्ति का उपयोग करें—और इसे अपनी अन्तर-दिव्यता पर लागू करें। जिस प्रकार, जब हम अपने जीवन के किसी बाहरी पहलू को नया नाम देते हैं तो यह हमें उस पहलू को नई दृष्टि से देखने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है, उसी प्रकार हमारी अन्तरात्मा को दिया गया नया नाम भी हमें प्रेरित कर सकता है कि हम अपनी अन्तरात्मा को नई दृष्टि से देखें और उसके साथ अपने सम्बन्ध में नयापन लाएँ। जैसे एक नाम किसी भौतिक क्षेत्र पर दावा करने, उसे पाने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है, वैसे ही नाम उस *अन्तरिक* क्षेत्र को दोबारा पाने में हमारी सहायता कर सकता है जिसके होने का हमें कभी एहसास ही नहीं था। [प्रभावशाली रूप से, इस सिखावनी में गुरुमाई जी 'पुनः नामकरण करना' के साथ-साथ जो दो और कार्यों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं, वे हैं 'पुनः प्राप्त करना,' और 'पुनः रचना करना'।]

हम जो हर समय करते हैं—और जो हमारी अन्तर-दिव्यता का प्रवेशद्वार है—उसका एक और सटीक उदाहरण है, 'श्वास लेना'। 'पुनर्नवीन करना' की सिखावनियों में, और विशेषकर सिखावनी ६ में गुरुमाई जी श्वास लेने के विषय पर बात करती हैं। श्रीगुरुमाई की इस बात से मैं कौतूहल से भर गई कि कैसे *अपने आप चलने वाली* साँस भी हमें अन्तर-जगत की गहराइयों के बारे में कुछ बता सकती है। श्रीगुरुमाई 'वह आह, वह लम्बी साँस' कहानी का उल्लेख करती हैं जिसमें कहानी के मुख्य पात्र की एक साधारण-सी आह उसकी सबसे गहरी ललक का प्रमाण है। क्या आपको यह जाना-पहचाना-सा नहीं लगता? इस बारे में सोचिए : जब आप अपने साथी के साथ अपनी शादी की सालगिरह नहीं मना पाते हैं या फिर आप अपने बच्चे की गायन अथवा पठन प्रस्तुति में नहीं पहुँच पाते हैं या आप किसी अन्य व्यक्ति के साथ होने की तमन्ना रखते हैं, या फिर किसी अन्य स्थान पर जाना चाहते हैं परन्तु ऐसा कर नहीं पाते हैं तो क्या आप एक आह नहीं भरते? एक गहरा निःश्वास नहीं छोड़ते? उस समय आपका प्रश्वास आपके प्रेम को, आपके हृदय के गहरे व चिरस्थायी स्नेह को उतना ही प्रकट करता है जितना कि आपके अफ़सोस को। इस उदासी में समाहित है, अपने बारे में कुछ पहचानने का अवसर, अपने हृदय की प्रेरणा, इसकी पुकार के साथ और भी गहराई से एकलय होने का अवसर।

***

ये केवल दो उदाहरण हैं, एक है 'पुनर्नवीन करना' की सिखावनियों की आरम्भिक सिखावनी से और एक समापन की सिखावनी से। परन्तु इन सिखावनियों में गुरुमाई जी *अपने आन्तरिक और बाह्य*

परिदृश्य को पुनर्नवीन करने के कई सारे अन्य साधन व अभ्यास, अनेक तरीक़े प्रदान करती हैं जिनका अन्वेषण भी उतने ही विस्तार से किया जा सकता है।

यह मेरा अपना अनुभव रहा है कि हम साधना में जितने प्रयास करते हैं, उनके फल संचित होते जाते हैं। ये प्रयास एक-दूसरे से सम्बल प्राप्त करते हैं, वे एक-दूसरे को ऊर्जा प्रदान करते हैं और श्रीगुरु की कृपा से ऊपर उठते, उन्नत होते जाते हैं। श्रीगुरुमाई ने तीसरी सिखावनी में हमें एक अभिकथन प्रदान किया था और उसे दोहराते रहने के लिए कहा था। मैं उस अभिकथन पर गहराई से विचार करती रही हूँ। उस अभिकथन की अन्तिम पंक्ति है, "अपनी साधना करने के मेरे समस्त प्रयत्न अब प्रयत्नहीनता की आभा से दमकेंगे क्योंकि मैं जानता हूँ कि कृपा मेरी सहचरी है।"

कुछ समय पूर्व मैंने गुरुमाई जी से इस पंक्ति के बारे में, और विशेषकर प्रयत्न करने व प्रयत्नहीनता के बीच के सम्बन्ध के बारे में पूछा। उत्तर में श्रीगुरुमाई ने एक कलाकार की उपमा दी—वह किसी भी क्षेत्र का कलाकार हो सकता है, संगीतकार, चित्रकार, लेखक, अभिनेता, नर्तक। एक कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह पहले अपनी कला को करने की तकनीक में निपुणता प्राप्त करे, उस कला को सीखने के लिए आवश्यक समय देकर अपनी कला के मूल तत्त्वों, उसके मूल सिद्धान्तों को सीखे। अन्ततः दिन-प्रतिदिन, लगातार ऐसा करते रहने से वह उन सिद्धान्तों की सीमाओं व बन्धनों को पार कर पाता है। अपने संगीत के सुरों की हरकतों में, अपनी तुलिका चलाने के तरीक़े में, अपने शब्दों को स्वतः ही वाक्य का आकार लेते हुए देखने में वह स्वतन्त्रता को पा लेता है। अनुशासन परिवर्तित हो जाता है, कला में।

गुरुमाई जी ने मुझे यह भी समझाया कि जब हम उस चीज़ को 'पसन्द' करते हैं जिसके लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं—जब हमें प्रयत्न करने में मज़ा आता है या फिर हम उसे करने के लिए प्रेरित होते हैं—तब हमें लगता ही नहीं कि हम 'प्रयत्न' कर रहे हैं। श्रीगुरुमाई ने कहा कि इस दृष्टि से प्रयत्न प्रेम जैसा है। जी हाँ, प्रेम को हर वस्तु, हर जीव के प्रति व्यक्त किया जा सकता है—परन्तु जब आपको कोई ऐसा या कुछ ऐसा मिल जाता है जिससे प्रेम करना *सरल* होता है तो क्या प्रेम अभिव्यक्त करना थोड़ा और सहज-स्वाभाविक नहीं हो जाता?

मुझे बहुत ख़ुशी होती है कि एक सह-सिद्धयोगी होने के नाते मैं आपसे बात करती हूँ और आपके अनुभवों को पढ़ती हूँ कि आप किस प्रकार श्रीगुरुमाई की इन सिखावनियों का अभ्यास करते रहे हैं। आपने अपने अनुभवों में जो भी बताया है, वह उन सभी बिन्दुओं को दर्शाता है जिनका मैंने अभी उल्लेख किया है—साधना के प्रति वचनबद्धता, कैसे इन समर्पित प्रयत्नों के प्रभावों में वृद्धि होती जाती

है और इसके फलस्वरूप होने वाला वह सूक्ष्म और बड़ा रूपान्तरण। उदाहरण के लिए, आपमें से किसी ने हाल ही में यह लिखा :

> मेरे लिए श्रीगुरुमाई की सिखावनियों के इस संग्रह का एक सबसे महत्त्वपूर्ण फल यह है कि मेरी अपनी साधना के साथ मेरे सम्बन्ध में बदलाव आया है। मुझे लगता है कि ये सिखावनियाँ मुझे अधिक आत्मविश्वास प्रदान कर रही हैं और साथ ही मेरे अपने 'आन्तरिक परिदृश्य' को समझने, उसका वर्णन करने और उसे अनुभव करने की मेरी शब्दावली में भी वृद्धि हो रही है। सबसे बढ़कर बात यह है कि इन सिखावनियों ने मुझे प्रोत्साहित किया है कि मैं अपनी साधना के प्रति एक प्रसन्नताभरे साहसिक कार्य का भाव रखूँ . . .

मैं कल्पना करती हूँ कि मेरी ही तरह आपमें से कई लोग भी इन सिखावनियों को दोबारा पढ़ेंगे। जब आप ऐसा करेंगे तो आप ज़रूर कुछ नया खोज निकालेंगे—सिखावनी के बारे में और ख़ुद अपने बारे में भी। हर सिखावनी में जिन कहानियों का उल्लेख किया गया है, आप उस सिखावनी के नीचे दिए गए लिंक पर जाकर इन कहानियों को दोबारा पढ़ सकते हैं; ये कहानियाँ आपके अध्ययन को सम्बल प्रदान करने व उसे आगे बढ़ाने हेतु पुनर्लिखित हैं तथा भाषान्तर के साथ दी गई हैं, और इनकी अंग्रेज़ी में ऑडिओ रिकॉर्डिंग भी उपलब्ध है।

आप इन सिखावनियों के साथ दिए गए दृश्यों पर भी ठहर सकते हैं। मैंने पहले भी लिखा है कि कैसे सिद्धयोग पथ की वेबसाइट के विभिन्न डिज़ाइन व कलाकृतियों का प्रायः एक विशेष व सुविचारित अर्थ होता है। 'पुनर्नवीन करना' सिखावनियों के साथ भी ऐसा ही है। जैसा कि आपने देखा होगा कि हरेक सिखावनी का पृष्ठ चाँदी को पीटकर बनाए गए पत्तर जैसा है। गुरुमाई जी ने मुझे बताया कि जब वे इन सिखावनियों को लिख रही थीं तो चाँदी के इस पत्तर का चित्र उनके मन में उभरा।

मैंने हमेशा महसूस किया है कि श्रीगुरुमाई और एकलयता, एक ही हैं, इसलिए यह जानना शायद आश्चर्यजनक नहीं है—और साथ ही यह पूरी तरह से विस्मयजनक भी है—कि चाँदी और ख़ासकर चाँदी के पत्तर में वे गुण होते हैं जो इन सिखावनियों के अनुरूप हैं। शुद्ध चाँदी चमकदार होती है, जो प्रकाश को सबसे अधिक प्रतिबिम्बित करने वाली धातुओं में से एक है और इसमें न तो ज़ंग लगता है और न ही इसका क्षय होता है। साथ ही, यह इतनी मुलायम और लचीली होती है कि इसे तोड़े बिना, पीटकर महीन पत्तरों या सुन्दर आकारों का रूप दिया जा सकता है। जब चाँदी पर इस तरह से कार्य किया जाता है तो वह और भी मज़बूत व अधिक टिकाऊ बन जाती है। सम्पूर्ण इतिहास में, चाँदी के पत्तरों से

बहुमूल्य वस्तुएँ बनाई जाती रही हैं, जैसे कि आभूषण, मुद्राएँ, सजावट की वस्तुएँ और धार्मिक व आध्यात्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग की जाने वाली सामग्रियाँ।

मुझे लगता है कि यह उपमा स्पष्ट है। यह उत्साहवर्धक भी है। आपमें से कई लोगों ने यह बताया कि गुरुमाई जी की ये सिखावनियाँ बिलकुल सटीक समय पर आपको प्राप्त हुई हैं। आपको पूर्ण विश्वास था कि श्रीगुरुमाई सीधे आपसे व साथ-साथ आपकी विशिष्ट परिस्थितियों के विषय में बात कर रही हैं। इसलिए यह कितनी अद्भुत बात है कि इन सिखावनियों से मार्गदर्शन पाकर हम स्वयं को और अपने जीवन को चाँदी के एक शानदार कैन्वस जैसा समझें जो हमारी साधना द्वारा और भी मज़बूत, और भी सुन्दर, आश्चर्यजनक रूप से अधिकाधिक परिष्कृत होता जा रहा है।

आदर सहित,
ईशा सरदेसाई

© २०२४ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।